

वीर संवत् २४९२, माघ शुक्ल १४, शुक्रवार

दि.४-२-१९६६, गाथा ८ से १०, प्रवचन नं.-१७

‘छहढाला’ (तसरी ढाल की) आठवीं गाथा का भावार्थ। इस सम्यग्दर्शन – व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय छह द्रव्य हैं, उसकी व्याख्या चलती है। निश्चयसम्यग्दर्शन हो, वहाँ उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन ऐसा होता है – उसका वर्णन करते हैं। समझ में आया ? उसमें अर्थ किया और थोड़ा भावार्थ (लेते हैं)। पहली आकाशद्रव्य की व्याख्या आयी न ? ‘सकलद्रव्य को वास जासमें, सो आकाश पिछानो;...’ जो आकाश नामक सर्वव्यापक पदार्थ है, उसमें सब द्रव्य रहे हुए हैं। उसे सम्यक्-व्यवहार सम्यक् में भलीभाँति जानकर श्रद्धान करना चाहिए।

‘भावार्थ :- जिसमें छह द्रव्यों का निवास है, उस स्थान को आकाश कहते हैं।’ नीचे दृष्टान्त दिया है – जैसे पानी में भस्म डाले तो वह समा जाती है। फिर उसमें चीनी डाले वह (भी) समा जाती है; सुई डाले वह (भी) समा जाती है। यह दृष्टान्त हिन्दी में (दिया है) यह सब दृष्टान्त हिन्दी में दिये हैं। यह नीचे उसका कथन है। उसे आकाश मानना चाहिए।

‘जो अपनेआप बदलता है तथा अपनेआप बदलते हुए अन्य द्रव्यों को बदलने में निमित्त है, उसे निश्चय काल कहते हैं।’ कालद्रव्य है, उसके असंख्य प्रदेश हैं (असंख्य कालाणु हैं)। जैसे कुम्हार के चाक को लोहे की कीली होती है; वैसे जगत के प्राणी को – जड़-चैतन्य को परिणमन में कालद्रव्य का निमित्त है। कुम्हार का चाक चलता है न ? उसमें नीचे कीली निकले न ? कीली होती है न कीली ? यह कालद्रव्य दूसरे द्रव्यों को परिणमन में निमित्त है। परिणमते तो वे स्वयं अपनेआप। इस प्रकार भगवान द्वारा देखे हुए छह द्रव्य नहीं मानते। श्वेताम्बर कालद्रव्य नहीं मानते। यहाँ कहते हैं कि व्यवहार समकित में छह द्रव्य इस प्रकार है, उसमें कुछ (लोग) काल द्रव्य को मानना चाहिए; नहीं माननेवाले को व्यवहार

समकित में भी भूल है। समझ में आया ? 'रात-दिन, घड़ी, घण्टा आदि को व्यवहारकाल कहा जाता है। इस प्रकार अजीवतत्त्व का वर्णन पूरा हुआ।'

अब, आस्रवतत्त्व का वर्णन करते हैं। उसके मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग – ऐसे पाँच भेद हैं। आस्रव और बन्ध-दोनों में भेद है। क्या है ? कि, 'जीव के मिथ्यात्व-मोह-राग-द्वेषरूप परिणाम, वह भाव-आस्रव है और उन मलिन भावों में स्निग्धता, वह भावबन्ध है।' यह जरा भेद डालकर समझाया है। यह आठवीं गाथा (पूरी) हुई। अब नौवीं।

आस्रवत्याग का उपदेश और बन्ध, संवर, निर्जरा का लक्षण

ये ही आत्मको दुःख-कारण तातैं इनको तजिये;

जीवप्रदेश बन्धै विधि सों सो, बंधन कबहुँ न सजिये।

शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये;

तप-बल तैं बिधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये॥९॥

अन्वयार्थ :- (ये ही) यह मिथ्यात्वादि ही (आत्मको) आत्मा को (दुःखकारण) दुःख का कारण हैं (तातैं) इसलिये (इनको) इन मिथ्यात्वादि को (तजिये) छोड़ देना चाहिए (जीवप्रदेश) आत्मा के प्रदेशो का (विधि सो) कर्मों से (बन्धै) बँधना वह (बंधन) बन्ध (कहलाता है,) (सो) वह (बन्ध) (कबहुँ) कभी (न सजिये) नहीं करना चाहिए। (शम) कषायों का अभाव (और) (दम तैं) इन्द्रियों तथा मन को जीतने से (कर्म) कर्म (न आवैं) नहीं आये वह (संवर) संवर तत्त्व है; (ताहि) उस संवर को (आदरिये) ग्रहण करना चाहिए। (तपबल तैं) तप की शक्ति से (विधि) कर्मों का (झरन) एकदेश खिर जाना सो (निरजरा) निर्जरा है। (ताहि) उस निर्जरा को (सदा) सदैव (आचरिये) प्राप्त करना चाहिए।

भावार्थ :- (१) यह मिथ्यात्वादि ही आत्मा को दुःख का कारण है, किन्तु पर पदार्थ दुःख का कारण नहीं हैं; इसलिये अपने दोषरूप मिथ्याभावों का अभाव करना चाहिए। स्पर्शों के साथ पुद्गलों का बन्ध, रागादि के साथ जीव का बन्ध और अन्योन्य-अवगाह वह

पुद्गल-जीवात्मक बन्ध कहा है। (प्र.सार गाथा १७७।) रागपरिणाममात्र ऐसा जो भावबन्ध है वह द्रव्यबन्ध का हेतु होने से वही निश्चयबन्ध है जो छोड़ने योग्य है।

(२) मिथ्यात्व और क्रोधादि रूप भाव-उन सबको सामान्य रूप से कषाय कहा जाता है। (मोक्षमार्ग प्रकाशक, देहली पृष्ठ ४०) ऐसे कषाय के अभाव को शम कहते हैं। और दम अर्थात् जो ज्ञेय-ज्ञायक, संकर दोष टालकर, इन्द्रियों को जीतकर, ज्ञानस्वभाव द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक (पृथक्, परिपूर्ण) आत्मा को जानता है उसे - निश्चयनय में स्थित साधु वास्तव में जितेन्द्रिय कहते हैं। (समयसार गाथा ३१)।

स्वभाव-परभाव के भेदज्ञान द्वारा द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय तथा उनके विषयों से आत्मा का स्वरूप भिन्न है - ऐसा जानना उसे इन्द्रिय-दमन कहते हैं। परन्तु आहारादि तथा पाँच इन्द्रियों के विषयरूप बाह्य वस्तुओं के त्यागरूप जो मन्दकषाय है उससे वास्तव में इन्द्रिय-दमन नहीं होता, क्योंकि वह तो शुभराग है, पुण्य है, इसलिए बन्ध का कारण है - ऐसा समझना।

(३) शुद्धात्माश्रित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धभाव ही संवर है। प्रथम निश्चयसम्यग्दर्शन होने पर स्वद्रव्य के आलम्बनानुसार संवर-निर्जरा प्रारम्भ होती है। क्रमशः जितने अंश में राग का अभाव हो, उतने अंश में संवर-निर्जरारूप धर्म होता है। स्वोन्मुखता के बल से शुभाशुभ इच्छा का निरोध सो तप है। उस तप से निर्जरा होती है।

(४) संवर :- पुण्य-पापरूप अशुद्ध भाव (आस्रव) को आत्मा के शुद्धभाव द्वारा रोकना सो भावसंवर है और तदनुसार नवीन कर्मों का आना स्वयं-स्वतः रूक जाये तो द्रव्यसंवर है।

(५) निर्जरा :- अखण्डानन्द निज शुद्धात्मा के लक्ष से अंशतः शुद्धिकी वृद्धि और अशुद्धि की अंशतः हानि करना सो भाव-निर्जरा है; और उस समय खिरने योग्य कर्मों का अंशतः छूट जाना सो द्रव्यनिर्जरा है। (लघु जैन सि.प्र.पृष्ठ ४५-४६ प्रश्न १२१)

(६) जीव-अजीव को उनके स्वरूप सहित जानकर स्व तथा पर को यथावत् मानना, आस्रव को जानकर उसे हेयरूप, बन्ध को जानकर उसे अहितरूप, संवर को पहिचानकर

उसे उपादेयरूप तथा निर्जरा को पहिचानकर उसे हित का कारण मानना चाहिए* (मोक्षमार्ग प्र.अ. ९, पृष्ठ ४६९)

‘आस्रव त्याग का उपदेश और बन्ध, संवर, निर्जरा का लक्षण।’ देखो ! यह तो अभी नौ तत्त्वों को जैसा है, ऐसा मानना तो व्यवहार सम्यग्दर्शन का लक्षण है। निश्चय में तो आत्मा निर्विकल्प शुद्ध अखण्डानन्द की प्रतीति अनुभव में होना, (वह निश्चयसम्यग्दर्शन है)।

मुमुक्षु :- आत्मा शुद्ध है - ऐसा तो मानता है।

उत्तर :- शुद्ध क्या माने ? धूल में कहाँ से माने ? यह सब व्यवहार, उसे विकल्प में ऐसा होता है। ऐसा व्यवहार न हो, वहाँ निश्चय यथार्थ नहीं होता। निश्चय हो, तब उसे ऐसा व्यवहार होता है - ऐसा सिद्ध करते हैं। आगे बाद करते हैं न ! अभी तो बहुत बात बाकी है।

* आस्रव आदि के दृष्टांत :-

- (१) आस्रव :- जिस प्रकार किसी नौका में छिद्र हो जाने से उसमें पानी आने लगता है, उसी प्रकार मिथ्यात्वादि आस्रव के द्वारा आत्मा में कर्म आने लगते हैं।
- (२) बन्ध :- जिस प्रकार छिद्र द्वारा पानी नौका में भर जाता है, उसी प्रकार कर्मपरमाणु आत्मा के प्रदेशों में पहुँचते हैं (एक क्षेत्र में रहते हैं)।
- (३) संवर :- जिस प्रकार छिद्र बन्ध करने से नौका में पानी का आना रुक जाता है, उसी प्रकार शुद्धभावरूप गुप्ति आदि के द्वारा आत्मा में कर्मों का आना रुक जाता है।
- (४) निर्जरा :- जिस प्रकार नौका में आये हुए पानी में से थोड़ा (किसी बरतन में भरकर) बाहर फेंक दिया जाता है, उसी प्रकार निर्जरा द्वारा थोड़े-कर्म आत्मा से अलग हो जाते हैं।
- (५) मोक्ष :- जिस प्रकार नौका में आया हुआ सारा पानी निकाल देने से नौका एकदम पानी रहित हो जाती है, उसीप्रकार आत्मा में से समस्त कर्म पृथक् हो जाने से आत्मा की परिपूर्ण शुद्धअवस्था (मोक्षअवस्था) प्रगट हो जाती है अर्थात् आत्मा मुक्त हो जाता है ॥९॥

समझ में आया ?

आत्मा शुद्ध चिदानन्द ज्ञायकस्वरूप है - ऐसा अन्तर निर्णय अनुभव में सम्यक् प्रतीति होने पर भी, साथ में जब तक वीतराग न हो, तब तक ऐसे सात तत्त्व के वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा, उपादान निमित्त आदि भलीभाँति मानना चाहिए। आगे अभी देव-शास्त्र-गुरु की बात कहेंगे। नौवीं गाथा -

ये ही आत्मको दुःख-कारण तातैं इनको तजिये;
जीवप्रदेश बंधै विधि सों सो, बंधन कबहुँ न सजिये।
शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये;
तप-बल तैं बिधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये॥९॥

यह आस्रव छोड़ने योग्य है - ऐसा इसे मानना चाहिए। प्रत्येक शब्द में... प्रत्येक में अन्तर डाला है। मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत मान्यता, व्यवहार आदि की विपरीत मान्यता 'आत्मा को दुःख का कारण है।' यह सब मिथ्यात्व आदि दुःख के कारण हैं। आस्रव दुःख का ही कारण है। दुःख का कारण संयोग नहीं है। समझ में आया ? प्रतिकूलता, शरीर में रोग, निर्धनता और नरक में संयोग का दुःख... नरक में संयोग है, वह दुःख नहीं है। यह मिथ्यात्वादि दुःख के कारण तो इन्हें भगवान ने कहा है। इसके बदले संयोग को दुःख का कारण माने तो इस आस्रवतत्त्व का इसे पता नहीं है। समझ में आया ?

विपरीत मान्यता और राग-द्वेष के परिणाम, यह दुःख के कारण हैं; स्वभाव आनन्द का कारण है, यह विभाव दुःख का कारण है; संयोग दुःख का कारण नहीं है। नरक का संयोग आया, पशु (गति) में प्रतिकूलता आयी या मनुष्य में बिच्छु काटे, सर्प काटे - यह दुःख का कारण नहीं है - ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- ... याद नहीं रहता...

उत्तर :- यह क्या कहा ? दो बार कहा न ? दूसरा घोलन हो गया है, इसलिए (यह) याद नहीं रहता - ऐसा कहते हैं। समझ में आया या नहीं ?

मिथ्याश्रद्धा – विपरीत मान्यता कि यह प्रतिकूलता मुझे दुःख का कारण है, यह विपरीत मान्यता और राग-द्वेष, वह दुःख का कारण है। क्या कहा न पहले ? पढ़ा, इसमें है या नहीं ? ऊपर से नहीं, अन्दर से... है ? ‘यह मिथ्यात्वादि ही आत्मा को दुःख का कारण है।’ यह कारण है। प्रतिकूल संयोग, शरीर में रोग – पैर चले नहीं – यह दुःख का कारण नहीं है – ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- जीव को ?

उत्तर :- जीव को। यह क्या जड़ को है ? कहो, समझ में आया ? लड़के प्रतिकूल हो जाएँ, लड़के अलग हो जाएँ, बंटवारा हो जाए, इसलिए दुःख का कारण है – ऐसा नहीं है, यह यहाँ तो कहते हैं। विपरीत मान्यता (कि) मुझे ऐसा हुआ, मुझे ऐसा हुआ तथा राग और द्वेष के भाव, दुःख का कारण है। क्यों भाई ! विपरीत मान्यता, (जो शुभभाव है)। वह धर्म है अथवा वह मुझे ठीक है, पाप में मुझे मज़ा आता है – ऐसा मिथ्यात्वभाव दुःख का कारण है। सर्प काटे, बिच्छु काटे, सिर पर छूरे पड़े... सिर पर से समझे न ? बड़ा पचास-सौ मण का क्या कहलाता है ? कैची पड़े... सिर पर कोई घन मारे, वह दुःख का कारण नहीं है। सिर पर कोई घन मारे ऐसे सिर में वह दुःख का कारण नहीं है।

मुमुक्षु :- मारे, यह दुःख का कारण नहीं ?

उत्तर :- नहीं, कौन मारता है ? मारता नहीं इसे छूता भी नहीं। छुरा मारा, यह दुःख का कारण नहीं है। परन्तु मारा कहाँ है ? छुरा तो वहाँ शरीर के पास घूमता है, इसे छूता कहाँ है ? इसे स्पर्शित है मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेषभाव। वह इसे दुःख का कारण है। कहो, समझ में आया ? अग्नि में हाथ डाला, वह अग्नि दुःख का कारण नहीं है। गर्म उबलते हुए पानी और तेल की कड़ाई में मनुष्य को डाला, वह दुःख का कारण नहीं है; दुःख का कारण अन्दर में मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेषभाव खड़ा करता है, वह है। मुझे ऐसा हुआ इसे ऐसा हुआ, यह मुझे हुआ – ऐसी मिथ्या मान्यता और राग-द्वेष का भाव करता है, वह दुःख का कारण है।

मुमुक्षु :- बहुत कठिन...

उत्तर :- परन्तु है या नहीं इसमें ? तुम्हारे हाथ में तो यह (पुस्तक) दी है। समझ में

आया ? क्या कहा ?

‘ये ही आत्मको दुःख-कारण-’ ये ही आत्मा को दुःख का कारण है – ऐसा है न ? विपरीत श्रद्धा और राग-द्वेष के परिणाम, हर्ष-शोक के भाव, आस्रव है, वे जीव को दुःख का कारण है। स्वभाव दुःख का कारण नहीं है; संयोग दुःख का कारण नहीं है, परन्तु लड़का अच्छा हुआ हो और फिर समान हिस्सा नहीं दे, सँभाले नहीं तो दुःख होता है या नहीं ? वह दुःख का कारण है या नहीं ? कहो, इसमें समझ में आया ?

मुमुक्षु :- लड़का...

उत्तर :- इसे लड़का ही नहीं है परन्तु व्यर्थ में मान बैठा है, मूढ़। लड़का तो दूसरा कहीं का जीव है, वह उसका जीव है; उसके रजकण कहीं के हैं – उसमें तेरा लड़का कहा आया ?

मुमुक्षु :- परन्तु यह राग...

उत्तर :- यह राग मार डालता है। यहीं कहते हैं। यह राग करता है, और दोष निकालता है किसी और का। क्या (कहा) ? राग करता है, द्वेष करता है और दोष निकालता है किसी और का (अन्य का) है। कहते हैं, मूढ़ है। तुझे आस्रवतत्त्व का पता नहीं है – ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- भूल जाते हैं। वह उल्टा रस चढ़ गया है। ‘क्षत्रिय का रंग चढ़ा है, उतरता नहीं।’ वह नहीं (मिला) था एक बार ? वह रंग ऐसा चढ़ा सवेरे से शाम तक और पूरी जिन्दगी और अनन्तकाल से (चढ़ा हुआ है)। आहा..हा..! दुःख का कारण कौन हो ? कि जिसमें – आत्मा में आनन्द है, उस आनन्द की उल्टी अवस्था दुःख का कारण होती है। प्रतिकूल अवस्था – जड़ की या पर की प्रतिकूल अवस्था दुःख का कारण कैसे हो ? न्याय समझ में आता है कुछ ? परवस्तु की प्रतिकूलता तो मानी है। प्रतिकूलता क्या ? अपने आनन्द की प्रतिकूलता; आनन्दस्वरूप है, उसकी प्रतिकूलता अर्थात् विपरीतता – ऐसा मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष, यह दुःख का कारण है। समझ में आया ? नरक के बाह्य संयोग या स्वर्ग के या दरिद्रता के या निर्धनता के, कुँवारेपन के या सन्तानहीनता के या सिर पर पचास मण का भार पड़ा और पैर,

शरीर दब गया... हाय... हाय... अब ? मोटर में... लगता है, लो न ! देखो न ! अभी हुआ न ? कहते हैं, आज रात्रि में ही यहाँ हुआ, एक व्यक्ति मर गया। एक को यहाँ लाये थे। यह दुःख, मोटर फटी और उस पर पेट्रोल पड़ा, इसलिए दुःख का कारण है – ऐसा नहीं है।

परवस्तु – परपदार्थ तो भिन्न है। भिन्न है, वह दुःख का कारण कैसे होगा ? इसमें – इसके अस्तित्व में, इसकी सत्ता में, इसके होनेपने में कुछ हो तो दुःख का कारण हो। क्या कहा ? जो इसमें नहीं है, वे चीज़ें इसे दुःख का कारण कैसे हो ? इसमें कुछ समझ में आया ? आत्मा में कर्म नहीं, शरीर नहीं; प्रतिकूल-अनुकूल चीज़ें आत्मा में नहीं। जो चीज़ें आत्मा में नहीं हैं, वे इसे प्रतिकूल कैसे हो ? आत्मा में आनन्द है, उस आनन्द की उल्टी अवस्था स्वयं अपने अस्तित्व में – सत्ता में करता है। क्या कहा ?

इसके अस्तित्व में होवे तो दुःख का कारण हो, इसके अस्तित्व में हो तो आनन्द का कारण हो। समझ में आया ? इसके नित्य अस्तित्व में तो अतिन्द्रिय आनन्द है, अतः यह अतीन्द्रिय आनन्द का कारण होता है और इसके अस्तित्व में आनन्द को भूलकर विपरीत श्रद्धा करता है (कि) इस पुण्य से मुझे ठीक पड़ता है, पाप से मज़ा आता है; प्रतिकूल ठीक नहीं है, अनुकूल ठीक है – ऐसी मान्यता खड़ी करता है। यह मान्यता इसकी सत्ता में खड़ी करता है। सत्ता अर्थात् इसके क्षेत्रमें, इसके भावमें, इसके अस्तित्वमें यह भाव खड़ा करता है। इसके अस्तित्व में भाव खड़ा करता है, वह दुःख का कारण होता है। पर के अस्तित्व में हो तो इसे दुःख का कारण कहाँ से होगा ? समझ में आया इसमें ? हैं ! समझ में आया या नहीं ?

स्वयं असंख्य प्रदेशी, अनन्त गुण का धाम है औ इसकी वर्तमान अवस्था – यह इसका अस्तित्व द्रव्य-गुण और पर्याय। इसका अस्तित्व इन तीन में है। अब तीन में – अस्तित्व में इसे आनन्द और दुःख का कारण इसके अस्तित्व में होता है। ठीक है ?

मुमुक्षु :- वस्तु को ग्रहण करता है...

उत्तर :- व्यर्थ (ही) मूढ़ होकर मानता है। मानता है, ग्रहण करता है कब ? ग्रहण कब कर सकता है ? मानता है। यही कहते हैं न ? यह मेरा है, यह मैंने ग्रहण किया है, यह मैंने छोड़ा है – ऐसी मान्यता, इसे दुःख का कारण है। वस्तु कब पकड़ सकता है ? पर तो पर है।

आत्मा कहाँ पर को पकड़ता है ? और पर को छोड़ता है ? पर (चीज़) तो पृथक् ही पड़ी है। पर के अस्तित्व में आत्मा का अस्तित्व है ? अपने अस्तित्व में – अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अस्तित्व में दूसरे द्रव्य के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का अस्तित्व नहीं है। कहो, सिद्धान्त बराबर है ? क्या कहा ?

इस आत्मा के चार बोल – द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव। द्रव्य अर्थात् गुणपर्याय का पिण्ड; क्षेत्र अर्थात् इसकी चौड़ाई; काल अर्थात् वर्तमान अवस्था; भाव अर्थात् इसकी शक्ति। इसके अस्तित्व में इसे आनन्द और दुःख होता है। इसकी अस्ति में न हो, वह दूसरी चीज़ आनन्द और दुःख का कारण नहीं हो सकती। समझ में आया ? अब इसे अस्तित्व में – भाव में – द्रव्य में आनन्द है, तो उसका कारण अन्दर पर्याय से करे तो पर्याय में आनन्द आवे। इसके अस्तित्व में – द्रव्य में और भाव में तो आनन्द पड़ा है। इसके क्षेत्र की चौड़ाई में भी उतना चौड़ा आनन्द पड़ा है। ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द जिसके अस्तित्व में है, उसे कारण बनावे तो पर्याय में आनन्द हो और पर का लक्ष्य करके, ‘यह मुझे ठीक नहीं है’ – ऐसा कारण बनावे तो यह भाव इसे मिथ्यात्व राग-द्वेष दुःख का कारण है। कहो, भाई ! कहो, समझ में आता है या नहीं ? ऐ..ई ! लड़को ! इसमें समझ में आता है या नहीं ? आहा..हा.. !

जिसकी सत्ता में जो हो, वह उसे दुःखरूप या सुखरूप होता है – यह सिद्धान्त। जिसमें जो नहीं, वह नहीं; इसमें नहीं, वह नहीं, यह नहीं वह दुःखरूप-सुखरूप कैसे होगा ? इसमें वह है नहीं। आहा..हा.. ! आत्मा में कर्म नहीं। आत्मा में इसे (शरीर को) चोंट लगे, हथियार या अग्नि आत्मा में नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- असाता का उदय,

उत्तर :- असाता का उदय जड़ में रहा है, आत्मा में कहाँ आया है ? समझ में आया या नहीं ? पेन्सिल लगी, उसमें असाध्य हो गया, वह कहाँ हो गया ? कौन हो गया ? वह तो पर्याय में हो गयी थी। अपने अस्तित्व में खाली हुआ था। पर के कारण हुआ था ? पेन्सिल के कारण हुआ था ? क्या कहलाती है वह ? पेन्सिल। कहो, समझ में आया ? कोई भी वस्तु, यथार्थ क्या है – उसका निर्णय करना चाहिए। ऐसा का ऐसा गड़बड़-वाला मानना – ऐसा

नहीं होना चाहिए। उसका निर्णय (यथार्थ चाहिए)। जो चीज़ आत्मा है, उस आत्मा में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव चार है। द्रव्य अर्थात् तो शुद्ध पूरा शक्ति का पिण्ड; गुण अर्थात् शक्ति; क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई - अवगाहन है, काल अर्थात् उसकी अवस्था। अब इन चार में अवस्था में हो, उसे सुख-दुःख होता है। नित्य-आनन्द है, वह गुण में है और उसका आश्रय करे तो पर्याय में आनन्द होता है। उस पर्याय में, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में तो कुछ है नहीं; पर्याय में पर की प्रतिकूलता देखकर मुझे ऐसा हुआ - ऐसी मिथ्या श्रद्धा, राग-द्वेष भाव इसकी अवस्था में हो, वह दुःखरूप और दुःख का कारण है। कहो, भाई ! निमित्त उड़ गया इसमें। भाई ! अरे... ! भगवान ! वह तो धर्मास्तिकायवत् निमित्त है, सुन न ! पूज्यपादस्वामी का 'धर्मास्तिकायवत्' - एक ही शब्द महासिद्धान्त है। सबकी हड्डियाँ एक शब्द में है। तेरी पर्याय से तुझे सुख-दुःख होता है या दूसरी चीज़, दूसरे की पर्याय (से) तुझे सुख-दुःख (का कारण) होती है ? समझ में आया ? आहा..हा.. !

मुमुक्षु :- यह बात सुनी वहाँ तो..

उत्तर :- फिर बाहर फिर क्या हो गया वापस ? भूल जाने का होगा ? नींद में कोई कहे कि जमु... तो कहता है - हं... ! ऐसा हो जाता है। तीन काल में देखा नहीं। लो ! नाम दिया, इस शरीर का नाम दिया। (नाम) किसे कहना ? इस अंगुली को ? इसे ? किसे कहना इसमें ? पूरे को कहना परन्तु पूरा शरीर है। पूरा कहो तो शरीर है, यह कहो तो कान है, यह कहो नाक है, यह कहो तो आँख है, यह कहो तो चमड़ी है। इसमें किसे कहना - जमुभाई ! कल्पित खड़ा किया, (उसे) भी हूँकार में हकार आ जाता है। यह (आत्मा) तो विद्यमान चीज़ है। समझ में आया ? आहा..हा.. !

यह सर्वज्ञ भगवान कहते हैं, वे यह तत्त्व है। इन तत्त्वों को इस प्रकार न माने तो उसके व्यवहार सम्यग्दर्शन में भूल है - ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ? आस्रव अर्थात् मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेषभाव-शुभाशुभभाव, वह दुःख का कारण है - ऐसा न मानकर... इसलिए तो शब्द लिया। 'ये ही-' ऐसा शब्द लिया है। है ? 'ये ही आत्मको दुःख कारण -' ऐसा शब्द लिया है। अर्थात् निश्चय से यही दुःख का कारण है - प्रतिकूल-अनुकूल संयोग

परसत्तामें रहे हैं, वे दुःखके कारण नहीं है – ऐसा सम्यग्दृष्टि व्यवहार समकित में भी ऐसा मानता है। निश्चय समकित में तो आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति, अनुभव और श्रद्धा है। समझ में आया ? आहा..हा..! बहुत विवाद परंतु... समझ में आया ?

मिथ्यात्वादि दुःख का कारण है, अर्थात् वे दुःखरूप है, उसे दुःख का कारण कहा है। दुःखरूप ही वह है; फिर दुःख दूसरा और दुःख का कारण दूसरा ऐसा है नहीं। यह कारण और रूप – कारण और कार्य स्वयं एक ही है – ऐसा कहते हैं। क्या कहा ? **‘ये ही आत्मको दुःख का कारण - ’** तो दुःखरूप फिर दूसरी चीज़ होगी और दुःख का कारण दूसरी (चीज़) होगी ऐसा है नहीं। आहा..हा..! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड कुण्ड है। उसमें विपरीत श्रद्धा-विपरीत मान्यता और राग-द्वेष, यह स्वयं ही दुःखरूप कहो या दुःख का कारण कहो। इसलिए यहाँ कारण रखा है। इसलिए दूसरी कोई चीज़ दुःखरूप है – ऐसा तो आता नहीं। दुःखरूप यह है और दुःख का कारण दूसरा कहलाये, (–ऐसा नहीं है)। भाई ! यह अवस्था दुःखरूप और दुःख का कारण दूसरा ? तभी यहाँ रखा है कि यही दुःख का कारण है – ऐसा शब्द रखा है। क्या कहा ?

कोई ऐसा कहे कि आस्रव दुःखरूप है। तब तो फिर उसे ऐसा लगता है कि कारण (दुःखकारण) फिर दूसरा होगा। यहाँ तो कहते हैं – **‘ये ही आत्मको दुःख का कारण - ’** उनके शब्दों में तो बहुत सूक्ष्मता भरी है, हाँ ! पण्डित है न ! पूर्व के शास्त्रानुसार बात को रखते हैं। समझ में आया ? जमैया लगा, वह दुःख का कारण नहीं है; उसमें द्वेष हुआ, वह दुःख का कारण और दुःखरूप है। समझ में आया ? स्त्री-पुत्र प्रतिकूल बोले (कि) बैठ जाओ अब, अबतक बहुत मूर्खता की है, कब तक करनी है ? (ऐसे) स्त्री-पुत्र कहे, (तो) वे शब्द दुःख का कारण नहीं है; वैसे ही उनका आत्मा और उनका शरीर दुःख का कारण नहीं है। उस समय ‘तिष्ठित हुआ’ यह ऐसा करता है, वह ऐसा करता है – वह ऐसा करता है – वह तो परवस्तु है, उसमें तुझे क्या है ? ऐसी मिथ्या मान्यता और राग-द्वेष का भाव, वह दुःखरूप है। कहो, भाई ? यह तो समझ में आता है या नहीं ?

यह तो दो और दो = चार जैसी बात है, परन्तु लोगों को कुछ विचार ही नहीं होता, मंथन

नहीं होता, मनन नहीं होता। ऐसे के ऐसे अन्धेरे-अन्धेरे में गाड़ी हाँकते जाते हैं। खड्डे में पड़ती है या कहाँ पड़ती है – इसका उन्हें कुछ पता नहीं मिलता। आहा..हा.. ! कहो, इसमें समझ में आया ? कहो, भाई ! यह अच्छा लड़का हुआ, कमाया और इसकी पढ़ाई में पचास हजार खर्च किये, अलग हुआ एकदम... एक पाई नहीं देता, लो ! वह ऊपर से बोले कि क्या है ? तुमने हमें जन्म दिया है ? तुम्हारी रमण की वासना में हमारा जन्म हो गया। क्या है ? कहते हैं, यह दुःख का कारण नहीं है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? कारण ? कारण समझ में आया ?

तूने मिथ्याभाव और राग-द्वेष उत्पन्न किये हैं, (वे ही दुःख के कारण हैं)। यह चीज़ (पर चीज़) कोई दुःख का कारण नहीं है। ऐसे समय में (दुःख) नहीं होता ? लड़के ऐसा बोले ? लड़का बोले, वह तो जड़ की पर्याय है। उसका आत्मा है, वह राग करता है, दूसरा करे क्या ? द्वेष करता है। वह तो उसमें रहा। समझ में आया ? तुमने हमें उत्पन्न नहीं किया। हम तो तुम्हारी वासना की वृत्ति में हमारा आत्मा आ गया और हम हमारे कारण से हो गये, तुम्हारे कारण से नहीं। हाय... हाय... ! मार डाला यह तो ! भाई ! ऐसा बोलनेवाला है, हाँ ! व्यर्थ का दृष्टान्त दिया है – ऐसा नहीं है। (ऐसा) बनता है और यह बना हुआ है। यह घर की बात नहीं है। जो कुछ कहा जाता है, वह बनी हुई, सुनी हुई सही कही जाती है। भाई ! तुम तो व्यापार और धन्धे में पूरी जिन्दगी फँस गये, इसलिए तुम्हें पता भी नहीं होगा कि जगत में क्या होता है ?

यह तो हमने ठीक से सुना है। एक लड़के ने उसके पिता से कहा। हाय... हाय.. ! क्या शुरू हो गए हो ? एक पाई नहीं देंगे। (तुमने) कब दी है ? हमें उत्पन्न कब किया है तुमने ? तुम्हारे लिये किया है। तुम अभी तुम्हारी ममता से कहते हो। भाई ! तुम्हें पता भी नहीं होगा। यह संयोग दुःख के कारण नहीं हैं। यह तो ऊँचे से ऊँचा अन्तिम दुःख का दृष्टान्त दिया; यह दुःख का कारण नहीं है। मूढ़ व्यर्थ में मानता है। ऐ... मुझे ऐसा कहा... परन्तु तू कब उसका पिता था ? और वह कब तेरा पुत्र था ? व्यर्थ में तूने माना और फिर (कहता है कि) ऐसा होता है ? यह तो तूने राग के कारण दुःख माना। ठीक होगा ? भाई ! क्या होगा यह ?

‘इसलिए इन मिथ्यात्वादि भावों को छोड़ देना चाहिए।’ देखो ! इन्हें छोड़ना है। प्रतिकूलता आवे और वे बोलते बन्द होवे, ‘छोड़ दे’ बोलना- ऐसा नहीं। क्या कहा ? तुझे छोड़ देना चाहिए, मिथ्या श्रद्धा और राग-द्वेष के भाव तुझे दुःखरूप है, तूने किये हैं, तुझसे हुए हैं, तुझमें हुए हैं; इसलिए तुझे उन्हें छोड़ देना चाहिए। दूसरा छोड़े या बोलते बन्द हो तो तुझे हर्ष (सुख) आवे... सुन न ! बोलते बन्द हो, वह तो उसके कारण है, परन्तु तुझे क्या है ? समझ में आया या नहीं ? ‘इन मिथ्यात्वादि को छोड़ देना चाहिए।’ लड़के अच्छे हों, उन्हें सूझे, हाँ ! बापू... बापू... ! प्रतिकूलता न होवे और ऐसा कहे, वह भी दुःख का कारण नहीं। बापूजी... बापूजी... ! यह भी सिर पर हाथ फेरते। ऐसे निकलते और हमने देखते न ! यहाँ निकलते न ? सिर पर रखे। यहाँ जाते हों, तब देखते। हमने सब नजरो से देखा है, हाँ ! लड़के बड़े हुए तो समान मानना चाहिए न ! हम पिता है.. ऐसे। तुम मित्र हो गये अब बड़े हुए। अब तुम्हें स्वतन्त्रता की छूट है ऐसे। यहाँ एक बार देखा था। वह सुख का कारण नहीं है। संसारसुख का, हाँ ! वह संसारसुख का कारण नहीं है। कल्पना की कि यह मुझे ठीक है। कल्पना तो राग है। उसे सुख का कारण माना है, वह दुःख है। प्रतिकूलता होवे... आहा..हा.. !

बड़ा राजा हो, रानियां हों, राजपूतानी भी बड़े घर से आयी हो न ? वह भी पाँच-दस लाख का जागीरदार हों, यहाँ पचास लाख का हो। धीरे से कहे, हम राजपूतानी हैं, पता है न ? दरबार ! काली नागिन हो वह। समझ में आया ? भाई ! काली नागिन, हाँ ! ऐसा करके (कहे)। ध्यान रखना, दरबार ! हम भी राजपूतानी हैं, हाँ ! उसमें तो कितना भरा हो ! वहाँ उसे ऐसा (होवे कि) हाय... हाय... ! यह ? परन्तु वह तुझे दुःख का कारण कहाँ है ? तूने माना था कि यह मेरी प्रिया-अर्धांगिनी थी। (तेरी) मान्यता थी। उस मान्यता में तुझे चोट लगी। हैं ! यह संसार का सब आलेख ! संसार ऐसा है।

‘इन मिथ्यात्वादि को छोड़ देना चाहिए।’ है न ऐसा ? छोड़ना इन्हें। तूने विकारीभाव किये हैं। मिथ्या श्रद्धा, राग-द्वेष यह तुझे दुःख का कारण है; इसलिए छोड़ देना चाहिए। उसे छोड़ना चाहिए। वह कैसे छूटे ? यह प्रश्न अभी नहीं है। यहाँ तो अभी साधारण तत्त्व की व्याख्या चलती है न !

‘आत्मा के प्रदेशों का (विधिसों)...’ विधि है न ? विधि अर्थात् कर्म। ‘कर्मोंसे बंधना, वह बन्ध (कहलाता है)।’ द्रव्यबन्ध की व्याख्या ली है। समझ में आया ? द्रव्यबन्ध की व्याख्या ली है। बहुत जगह बन्ध में द्रव्यबन्ध की ही व्याख्या आती है। आत्मा सर्वत्र आता है। आत्मा में जो रजकण का बन्ध होता है, कर्म का बन्ध (होता है), वह आस्रव से बन्ध होता है। यह बन्ध है, वह कर्म के रजकण एक प्रदेश में होते हैं। ‘वह बन्ध कहलाता है।’

‘यह बन्ध कभी भी नहीं करना चाहिए।’ अर्थात् बन्ध में निमित्तपना नहीं करना चाहिए। इसके बदले बन्ध नहीं करना चाहिए – ऐसा कहा गया है, क्योंकि बन्ध का कारण आस्रव है; इसलिए बन्ध नहीं करना चाहिए, इसका अर्थ कि आस्रव नहीं करना चाहिए, तो बन्ध नहीं होगा। ‘वह (बन्ध) (कबहुं)...’ शब्द है न ? ‘कबहुं न सजिये-’ अबन्धस्वरूपी भगवान आत्मा... ! आत्मा तो अबन्धस्वभावी चैतन्यमूर्ति है। उसके भान द्वारा ऐसे बन्ध को किसी समय भी ‘सज’ न करना, अर्थात् बाँधना नहीं – नहीं करना चाहिए। यह बन्ध की व्याख्या हुई। इन नौ की व्याख्या ‘मोक्षमार्गप्रकाशक’ में आती है न ? अमुक यह है – बन्ध अहित है, निर्जरा हितकारण है, मोक्ष है, वह परमहित है। सब आता है न ? उसी शैली से यहाँ वर्णन किया है।

अब संवर की व्याख्या। ‘कषायों का अभाव...’ कषाय में मिथ्यात्वादि सब आ गया। इन्द्रियों का और मन का जीतना। इन्द्रियों और मन की ओर के झुकाव का वापस मोड़ना और कषायों का अभाव। ‘... जीतने से कर्म नहीं आवे...’ इससे आवरण नहीं आते। ‘वह संवरतत्त्व है...’ कर्म नहीं आवे, वह संवरतत्त्व है – ऐसे द्रव्यसंवर की व्याख्या की है। समझ में आया ? पहले में द्रव्यबन्ध की व्याख्या की थी; उसमें (आस्रव में) भाव आस्रव से बात की थी, भाव आस्रव से। यहाँ भी द्रव्यकर्म अर्थात् द्रव्यसंवर (से बात की है)।

भावसंवर होने पर आत्मा में... यहाँ ऐसा कहा न ? कषायों का अभाव होने पर, अविकारी स्वभाव के आश्रय से कषाय का अभाव होने पर इन्द्रियों की ओर का झुकाव घटने से अतीन्द्रिय की ओर आने पर उसे भाव नहीं होते, इसलिए कर्म नहीं आते। उसमें कर्म नहीं आते, इसलिए यहाँ भावसंवर हुआ। कर्म नहीं आये, वह द्रव्यसंवरतत्त्व है। कहो, समझ में आया ?

‘उस संवर को ग्रहण करना...’ उस संवर को ग्रहण करना। आस्रव को छोड़ना कहा था न ? आस्रव छोड़ना कहो या संवर ग्रहण करना कहो – दोनों एक बात है। शुद्धस्वरूप का आश्रय करके कषाय और इन्द्रियों का दमन करना अर्थात् दमन होता है, उसे संवर कहते हैं और उससे विरुद्ध को आस्रव (कहते हैं)। आस्रव को छोड़ना और संवर को ग्रहण करना, सब एक ही हुआ। आस्रव का व्यय करना और संवर का उत्पाद करना, संवर उत्पन्न करना। संवर आदर करने योग्य है; आस्रव आदर करने योग्य नहीं है – ऐसा कहा है। देखा ? समझ में आया ? फिर शुभ या अशुभ; शुभ हो या अशुभ हो। पुण्य परिणाम – आस्रव छोड़ने योग्य है – ऐसा कहा है। ‘संवर ग्रहण करना चाहिए।’ यह संवर की व्याख्या हुई।

अब, ‘तप की शक्ति से कर्मों का (झरना)...’ कर्मों का झरन (कहकर) यहाँ पर से निर्जरा की बात ली है। समझ में आया ? तप की शक्ति अर्थात् आत्मा की शुद्धता के प्रतपन द्वारा... भगवान आत्मा परम शुद्धस्वभाव की एकाग्रता द्वारा प्रतपन होना, उग्रता, आत्मा की अवस्था में शोभा होना, उसके द्वारा... यह भावतप हो गया, भावनिर्जरा हो गई; कर्मों का झरना, वह द्रव्यनिर्जरा हुई। ‘एकदेश खिर जाना...’ एकदेश खिर जाना। समझे न ? निर्जरा है न ?

इसमें दृष्टान्त दिया है। है न इसमें ? सब दृष्टान्त दिये हैं, हाँ ! अजीव में कहा है न ? उसमें वर्ण में पाँच-पाँच डाले हैं, देखो ! आकाश है न ? लोकाकाश। एक-एक को स्पर्शना; आँख रखी, उसमें पाँच वर्ण रखे हैं। समझे न ? यहाँ कषाय का सब रखा है। मीठे में आम रखा है; चटपटे में मिर्च रखी है। यहाँ सब हूँ, एक-एक जो है न ? ये सब रखे हैं, हाँ ! कड़वे में कोई कड़वी चीज़ रखी है; खट्टे में नीबू आदि रखे हैं; गर्म में कोई उष्ण रखा है; ठण्डे में बर्फ रखा लगता है। प्रत्येक में



अलग-अलग चीज़ रखी है। यह सब वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श है, यह जड़ के स्वभाव हैं – ऐसा बताया है। उनसे हटकर और आत्मा में अन्तर अनुभव की दृष्टि द्वारा शुद्धता द्वारा (अन्दर स्थिर होना), वह तप कहलाता है शुद्धता द्वारा तप, हाँ ! उससे कर्मों का झरना, कर्मों का खिरना। यह भी दृष्टान्त दिया है, हाँ !

आस्रवतत्त्व, देखो ! जहाज है न ? जहाज, देखो जहाज ! उसमें पानी आता है, देखो ! पानी आता है – ऐसा दृष्टान्त दिया है। फिर इस ओर ऐसा दिया, देखो ! बन्ध तत्त्व। अटकता है, पानी आकर उसमें अटकता है, देखो ! भर जाता है, देखो ! इसे बन्धतत्त्व का दृष्टान्त दिया है। इसमें संवर तत्त्व।



रोका है, देखो ! यहाँ रोका है। नीचे हाथ रखकर पानी आना रोकता है; और यह निर्जरा। थोड़ा पानी खाली करता है, देखो ! ऐसे अन्दर से निकालता है। जहाजमें से थोड़ा-थोड़ा पानी निकालता है। यह पाठ में दृष्टान्त दिया है। साधारण व्यक्ति को ख्याल आवे। हमने नयी छपाई है, उसमें होगा न ? परन्तु ऐसा स्पष्ट नहीं छपा है। नयी है न नयी ? है न ? नयी में यह सब है, यह रहा। इसमें है, परन्तु स्पष्ट नहीं है। कहो, इसमें समझ में आया ?

‘उस निर्जरा को सर्वदा प्राप्त करनी चाहिए।’ लो ! ठीक ! ‘उस निर्जरा को सर्वदा प्राप्त करनी चाहिए।’ शुद्धता, उग्रता सर्वदा करनी चाहिए। आत्मा के अखण्ड शुद्धस्वभाव आनन्द की ओर की एकाग्रता बारम्बार करनी चाहिए, उसे निर्जरा कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें ?

‘भावार्थ - (१) यह मिथ्यात्वादि ही आत्मा को दुःख का कारण है, किन्तु परपदार्थ दुःख का कारण नहीं है...’ देखो ! है न ? यह स्त्री, पुत्र, निर्धनता, अविवाहितपना, गरीबी - यह दुःख का कारण नहीं है।

मुमुक्षु :- सुख का कारण तो है न ?

उत्तर :- सुख का कारण फिर कब कहा ? समझ में आया ? यह तो मूढ़ कल्पना से मानता है कि मुझे सुख है। सुख का निमित्त कहा, परन्तु यह माने तब न ? दुःख माने तो दुःख का निमित्त कहा जाता है; इसलिए वास्तव में तो यहाँ उपादान को सिद्ध किया है। समझ में आया ? उससे सुख माना तो सुख की कल्पना भी दुःख है, यह तो उसमें दुःख का निमित्त हुआ। सुख की कल्पना तेरी है। प्रतिकूलता में दुःख का कारण तो तेरा है। वह तो उसके अस्तित्व में है; तेरे अस्तित्व में कहाँ है ? भाई ! अद्भुत बात। परन्तु यह। लड़का अच्छा हो और ऐसे मीठास लगे। कहते हैं कि उसके कारण मीठास नहीं लगती; इसे स्वयं के राग की मीठास लगती है।

मुमुक्षु :- ... मीठा लगता है...

उत्तर :- ऐसा अर्थात् क्या परन्तु ? परन्तु मीठा कब हो ? यह फिर ठीक कहता है। मीठी कहना किसे ? परवस्तु में कल्पना करके ऐसी दृढ़ आस्था हो गयी है कि मानो यह मीठास है, इसलिए ऐसा होता है; यह प्रतिकूल है, इसलिए ऐसा होता है। ऐसा इसे दृढ़ हो गया है। वहाँ

प्रतिकूल-अनुकूल कहाँ है ? वह तो है वह है। है, बस ! इतना एक है। क्या (है) ? आत्मा है, शरीर है। अब है, उसमें यह अच्छा-ऐसा कहाँ से आया ? वह तो ज्ञेय है। उसकी कल्पना में ऐसी भाषा और ऐसा मान और ऐसा होवे (तो अच्छा) यह तो इसने कल्पना की है, वस्तु में है नहीं। आहा..हा..! समझ में आया ?

‘इसलिए अपने दोषरूप मिथ्याभावों का अभाव करना चाहिए।’ दोष स्वयं उत्पन्न करता है, वह भाव को छोड़ना चाहिए। ‘स्पर्शों के साथ पुद्गलों का बन्ध...’ तीन बन्ध की व्याख्या करते हैं। ‘प्रवचनसार’ में है न ? ये परमाणु-परमाणु एकत्रित हों, उसे द्रव्यबन्ध कहा जाता है। ‘रागादि के साथ जीव का बन्ध और अन्योन्य-अवगाह...’ रागादि के साथ जीव का बन्ध (अर्थात्) राग के साथ में, यह शुद्ध स्वभाव, राग के साथ में एकत्व हो, वह भावबन्ध; परमाणु-परमाणु रजकण ऐसे स्पर्श से एकत्रित हों, वह द्रव्यबन्ध (है)। आत्मा शुद्धस्वभाव है, वह पुण्य-पाप के विकार से एकत्व हो, वह भावबन्ध है। समझ में आया ? ‘अन्योन्य-अवगाह, वह पुद्गल-जीवात्मक बन्ध कहा है।’ जीव और पुद्गल एक प्रदेश में इकट्ठे रहना, वह उभयबन्ध है।

‘राग परिणाममात्र ऐसा जो भावबन्ध है, वह द्रव्यबन्ध का हेतु होने से...’ वस्तुतः तो विकारी परिणाम, वह भावबन्ध है। वह जड़-द्रव्यबन्ध का हेतु होने से ‘वही निश्चय बन्ध है, जो छोड़ने योग्य है।’ निश्चय बन्ध छोड़ने (योग्य) है - इस प्रकार पाठ में छोड़ने को कहा है न ? निश्चय बन्ध छूटने से द्रव्यबन्ध नहीं होता।

‘(१) मिथ्यात्व और क्रोधादिक भाव...’ क्रोधादि में मानादि, लोभादि आ गये। ‘उन सबको सामान्यरूप से कषाय कहा जाता है।’ इन्हें कषाय कहते हैं। देखो ! ‘मोक्षमार्गप्रकाशक’ में कहा है। मिथ्यात्व को भी कषाय कहते हैं। ‘ऐसे कषाय के अभाव को शम कहते हैं।’ लो ! समझ में आया ? शम अर्थात् आत्मा का शुद्ध स्भाव, उसकी श्रद्धा और शान्ति का नाम शम (है)। वह मिथ्यात्व और कषाय के अभाव से होता है।

‘दम अर्थात् जो ज्ञेय-ज्ञायक का संकर दोष...’ जो (समयसार की) ३१ वीं गाथा में वर्णन किया है। ज्ञेय वस्तु और ज्ञायक आत्मा, उसे ‘संकर दोष टालकर...’ अर्थात् दो का

एकपना टालकर ' (इन्द्रियो को) जीतकर, ज्ञान स्वभाव द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक (पृथक् परिपूर्ण) आत्मा को जानता है, उसे निश्चयनय में स्थित साधु वास्तव में जितेन्द्रिय कहते हैं।' अर्थात् यहाँ तो दम की व्याख्या (की है।) आत्मा, खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, उसके विषय और जड़ इन्द्रियों से विमुख होकर अतीन्द्रिय स्वभाव में एकत्व हो, उसने इन्द्रियों का दमन किया - ऐसा कहा जाता है। भावेन्द्रिय जो खण्ड-खण्ड है, एक-एक विषय को जाननेवाली, जो विषय हैं - ऐसे खण्ड-खण्ड का लक्ष्य छोड़कर, अखण्ड ज्ञायक अतीन्द्रिय पर दृष्टि करके और खण्ड-खण्ड इन्द्रियों को जीते, उसने इन्द्रियों को जीता, उसने दम किया, दमन किया - ऐसा कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? 'समयसार' ३१ वीं गाथा है।

‘स्वभाव-परभाव के भेदज्ञान के बल द्वारा द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और उनके विषयों से आत्मा का स्वरूप भिन्न है - ऐसा जानना...' उसकी व्याख्या है। 'उसे इन्द्रियदमन कहते हैं परन्तु आहारादि तथा पाँच इन्द्रियों के विषयरूप बाह्य वस्तु के त्यागरूप जो मन्द कषाय है, उससे वास्तव में इन्द्रियदमन नहीं होता...' शरीर, आहारादि या इन्द्रियाँ मन्द होने से इन्द्रियों का दमन नहीं होता। शरीर, आहार, इन्द्रियाँ मन्द होने से कहीं इन्द्रियों का दमन नहीं होता - एक बात; और राग की मन्दता होने से भी इन्द्रियों का दमन नहीं होता - दो बात। क्या कहा ? आहारादि और पाँच इन्द्रियों के विषय, उस बाह्य वस्तु का त्याग अथवा घटना-कम होना, वह दमन नहीं है - एक बात। और उसमें होनेवाली मन्द कषाय भी दमन नहीं है। समझ में आया ? यहाँ संवर लिया है न ?

‘शम-दमतेँ जो कर्म न आवै -’ समताभाव और दमन का अर्थ - संयोग छूटे या इन्द्रियाँ कमजोर पड़ी, शरीर कमजोर पड़ा या आहार नहीं आया और आहार नहीं लिया - यह दमन नहीं है; यह तो जड़ की पर्याय हुई। उसके सम्बन्ध में कुछ राग की मन्दता की, शुभभाव (हुआ), वह भी इन्द्रियदमन नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- .. न खाना ...

उत्तर :- नहीं, नहीं आहार ऊपर नहीं, वह दमन नहीं - ऐसा कहते हैं। वह तो जड़ की पर्याय है। उसमें दमन क्या करना ? उसमें कहाँ दमन करना है ? शरीर को कमजोर करना तो

शरीर की पर्याय है। उसमें आत्मा ने क्या दमन किया ? इन्द्रियाँ कमजोर पड़ी, क्षीण हुई – उसमें इसने दमन क्या किया ? वह तो जड़ की पर्याय हुई और उसके सम्बन्ध में कहीं राग की मन्दता की, आहार-पानी का मन्द भाव हुआ, वह कहीं दमन नहीं है; वह तो पुण्यभाव है। समझ में आया ? संवरभाव नहीं है। यहाँ संवरभाव कहना है न ! कपड़ा पहिनते और आधा खुला रखते, पहले नहीं करते थे ?

मुमुक्षु :- ... मीठा नहीं खाये.

उत्तर :- हाँ, मीठा नहीं खाये। दूसरी मीठास होवे तो मीठा नहीं खाना। (-लोग ऐसा कहते हैं)। आहा.. ! मीठे के त्यागी... आहा.. हा... ! वास्तविक मीठे के त्यागी अन्दर के।

‘...वास्तव में इन्द्रियदमन नहीं होता क्योंकि वह तो शुभराग है, पुण्य है; इसलिए बन्ध का कारण है...’ बन्ध का कारण हो, उसे दमन नहीं कहा जाता। जिसमें बन्ध का अभाव हो, उसका नाम संवर है। आस्रव, बन्ध का कारण है न ? आस्रव का अभाव होने का नाम संवर है। कषाय का मन्दपना या शरीर का मन्दपना हो जाना, इन्द्रियाँ शिथिल हो जाना, वह कहीं दमन नहीं है; दमन तो संवरभाव है। राग की मन्दता और पर से हटकर स्वभावसन्मुख की एकाग्रता से जितना संवरभाव होता है, उसमें बन्ध का कारण रुकता है; इसलिए उसे संवर कहते हैं। समझ में आया ?

‘शुद्धात्माश्रित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धभाव ही संवर है।’ अब अस्ति से विशेष स्पष्टीकरण करते हैं। शुद्धात्मा ज्ञायकस्वरूप आत्मा, पूर्णानन्द के आश्रय से सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र जो शुद्धपर्याय (प्रकट हो), वह संवर है। ‘प्रथम निश्चयसम्यग्दर्शन होने पर स्वद्रव्य के अवलम्बानुसार...’ अपना चैतन्य भगवान, उसे शुद्धता का जितना अवलम्बन हो, ‘उसके अनुसार संवर-निर्जरा प्रारम्भ होती है।’ निमित्त के अनुसार देह की मन्दता, इन्द्रियों का दमन या उसके अनुसार या राग की मन्दता के अनुसार संवर प्रारम्भ नहीं होता। इस तरह से संवर-निर्जरा प्रारम्भ नहीं होती। समझ में आया ?

‘क्रमशः जितने अंश में राग का अभाव हो, उतने अंश में संवर-निर्जरारूप धर्म होता है।’ निमित्त में अन्तर पड़े, या विकार में तीव्र में से मन्द का अन्तर पड़े, वह कहीं शुद्धता का

कारण नहीं है। वह संवर-निर्जरा का कारण नहीं है। जिसमें बन्ध रुके, (वह संवर है)। वह तो शुभाशुभभाव रहित हो, तब रुकता है। शुभाशुभभावरहित कब होता है ? कि स्वभाव का आश्रय करके शुद्ध श्रद्धा ज्ञान और शान्त करे, अर्थात् आंशिक स्वभाव की शुद्धि हो, वह संवर-निर्जरा की शुरुआत है। समझ में आया ?

‘स्वसन्मुखता के बल से शुभाशुभ इच्छाओं का निरोध, वह तप है।’ तप की व्याख्या की है। इच्छा निरध तपः कहलाता है न ? तो इच्छा-निरोध तो नास्ति से हुआ। अस्ति से अपने में और अपने में होना चाहिए न ? शुद्ध पवित्र स्वरूप है, उसके सन्मुख होकर जितनी शुद्धता की उग्रता प्रकट हो, उसे तप कहा जाता है, उस तप से निर्जरा होती है। उपवास आदि तप से निर्जरा-बिर्जरा नहीं होती। परलक्ष्य से जितनी राग की मन्दता की क्रिया होती है, वह सब निर्जराभाव नहीं है; वह त बन्धभाव के कारणरूप आस्रवभाव है। शुद्धस्वभावस्वरूप चैतन्य के आश्रय से जितना शुद्धता का पवित्र भाव प्रकट होता है, वह संवर-निर्जरा का कारण है। वह निर्जरा का कारण अर्थात् शुद्धता बढ़ी। निर्जरा का कारण कहो या निर्जरारूप कहो। समझ में आया ? संवर की व्याख्या आ गयी है।

‘पुण्य-पापरूप अशुद्ध भाव (आस्रव) को आत्मा के शुद्धभाव द्वारा रोकना, वह भाव संवर है और तदनुसार नवीन कर्मों का आना स्वयं-स्वतः रुक जाए सो द्रव्य संवर है।’ यह भाव और द्रव्य (संवर) की व्याख्या की।

‘अखण्डानन्द निज शुद्धात्मा के लक्ष्य के बल से अंशतः शुद्धि की वृद्धि और अशुद्धि की अंशतः हानि करना, वह भाव निर्जरा है...’ शुद्धि बढ़ना। ‘और उस समय खिरने योग्य कर्मों का अंशतः छूट जाना, वह द्रव्यनिर्जरा है। (लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, पृष्ठ ६८-६९ प्रश्न १२१)’

‘जीव-अजीव को उसके स्वरूपसहित जानकर स्व तथा पर को यथावत् मानना, आस्रव को जानकर उसे हेयरूप मानना...’ यह स्पष्टीकरण किया है। ऊपर जो बात पाठ में की थी न ! (उसका स्पष्टीकरण है)। इसे मोक्षमार्ग प्रकाशक का आधार देकर (स्पष्ट करते हैं)। यह ‘मोक्षमार्गप्रकाशक’ में है। ‘जीव-अजीव को उसके स्वरूपसहित...’ स्वरूपसहित, ऐसा। जीव-अजीव द्रव्य, उसका स्वरूप-गुण-स्वभाव; उस ‘सहित

पहिचानकर स्व तथा पर को यथावत् मानना...' यह जीव-अजीव की मान्यता कहलाता है। 'आस्रव को जानकर उसे हेयरूप जानना...' इसमें छोड़ने योग्य कहा था न ? पुण्य-पाप के भाव, जो दुःख के कारण हैं, उन्हें पहिचानकर, उन्हें हेयरूप जानना।

'बन्ध को जानकर उसे हेयरूप मानना...' बन्ध को तजना - ऐसा कहा था। उसे अहितरूप जानना। 'संवर को पहिचानकर उसे उपादेयरूप मानना...' 'संवर आदरिये' - ऐसा था न ? इसमें आया था - 'संवर आदरिये।' 'निर्जरा को पहिचानकर उसे हित का कारण मानना चाहिए।' आत्मा में जितनी शुद्धि स्वभाव की - शुद्धि की वृद्धि हो, उसे हित का कारण मानना - ऐसा 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में 'टोडरमलजी' ने कहा है। आस्रव का दृष्टान्त नीचे दिया है, वे सब तो आ गये। कहो, समझ में आया ? यह नौवीं गाथा (पूर्ण) हुई।

मोक्ष का लक्षण, व्यवहारसमकित का लक्षण तथा कारण

सकल कर्मतैं रहित अवस्था, सो शिव सुखकारी;

इहि विध जो सरधा तत्त्वनकी, सो समकित व्यवहारी।

देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयादुत सारो;

येहु मान समकितका कारण, अष्ट-अंग-जुत धारो॥१०॥

अन्वयार्थ :- (सकर कर्मतैं) समस्त कर्मों से (रहित) रहित (थिर) स्थिर-अटल (सुखकारी) अनन्त सुखदायक (अवस्था) स्थिति-पर्याय - सो (शिव) मोक्ष कहलाता है। (इहि विध) इस प्रकार (जो) जो (तत्त्वनको) सात तत्त्वों के भेद सहित (सरधा) श्रद्धा करना सो (व्यवहारी) व्यवहार (समकित) सम्यग्दर्शन है। (जिनेन्द्र) वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी (देव) सच्चे देव (परिग्रह बिन) चौबीस परिग्रह से रहित (गुरु) वीतराग गुरु (तथा) (सारो) सारभूत (दयाजुत) अहिंसामय (धर्म) जैनधर्म (येहु) इन सबको (समकितको) सम्यग्दर्शन का (कारण) निमित्तकारण (मान) जानना चाहिए। सम्यग्दर्शन को उसके (अष्ट) आठ (अवगुत) अंगों सहित (धारो) धारण करना चाहिए।

भावार्थ :- मोक्ष का स्वरूप जानकर उसे अपना परमहित मानना चाहिए। आठ कर्मों

के सर्वथा नाश पूर्वक आत्मा की जो सम्पूर्ण शुद्ध (पर्याय) प्रकट होती है उसे मोक्ष कहते हैं। वह अवस्था अविनाशी तथा अनन्त सुखमय है; - इस प्रकार सामान्य और विशेषरूप से सात तत्त्वों की अचल श्रद्धा करना उसे व्यवहार समकित (सम्यग्दर्शन) कहते हैं। जिनेन्द्रदेव, वीतरागी (दिगम्बर जैन) गुरु, तथा जिनेन्द्रप्रणीत अहिंसामय धर्म भी उस व्यवहार सम्यग्दर्शन के कारण है अर्थात् इन तीनों का यथार्थ श्रद्धान भी व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है उसे निम्नोक्त आठ अंगों सहित धारण करना चाहिए। व्यवहार समकित का स्वरूप पहले, दूसरे तथा तीसरे छंद के भावार्थ में समझाया है। निश्चय समकित के बिना मात्र व्यवहार को व्यवहार समकित नहीं कहा जाता॥१०॥

‘मोक्ष का लक्षण...’ अन्तिम रहा। सात तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा व्यवहार समकित है - ऐसा कहना है न ? ये तत्त्व आ गये - जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। अब इसमें मोक्ष आया। ‘व्यवहार समकित का लक्षण...’ सब इकट्ठा किया और देव-गुरु-शास्त्र इसमें रखेंगे न ? ‘तथा कारण।’

सकल कर्मतैं रहित अवस्था, सो शिव सुखकारी;

इहि विध जो सरघा तत्त्वनकी, सो समकित व्यवहारी।

देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयादुत सारो;

येहु मान समकितका कारण, अष्ट-अंग-जुत धारो॥१०॥

‘सकल कर्मतैं रहित अवस्था...’ अवस्था, हाँ ! सिद्ध-मोक्ष एक अवस्था है - ऐसा सिद्ध करना है। ‘इहि विधि जो सरघा तत्त्वनकी सो समकित व्यवहारी।’ लो, यह अभी व्यवहार समकित; (यदि) निश्चय समकित होवे तो। समझ में आया ? आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति अखण्डानन्द है - ऐसे पुण्य-पाप के राग से भिन्न करके आत्मा के अनुभव में प्रतीति (होना), वह निश्चय समकित है। वह निश्चय समकित हो, वहाँ उसे ऐसा व्यवहार समकित होता है। ऐसा व्यवहार (समकित) होना चाहिए - ऐसा कहते हैं।

‘(सकल कर्मतैं) समस्त कर्मों से (रहित)...’ आठों कर्मों से रहित अर्थात् उन्हें अब

वापस जन्म लेना पड़े या अवतार लेना पड़े – ऐसा नहीं होता। सकल कर्मों से रहित ‘थिर अर्थात् अविनाशी (सुखकारी) अनन्त सुखदायक...’ नाश न हो – ऐसा सुखदायक ‘(हालत-पर्याय), वह मोक्ष कहलाता है।’ देखो ! मोक्ष, आत्मा की एक पर्याय है। मोक्ष गुण नहीं है, द्रव्य नहीं है, आत्मा की पूर्ण अशुद्ध अवस्था, वह संसार; शुद्धता की अपूर्ण अवस्था, वह मोक्ष का मार्ग और पूर्ण शुद्ध अवस्था, वह मोक्ष; यह सब पर्याय हैं। अभी तो समकित पर्याय में लोगो को विवाद उठता था। समकित गुण है या पर्याय ? तुम पर्याय कहते हो, परन्तु विचारकर लिखो, वह तो गुण है – ऐसा लेख आया था।

यहाँ तो कहते हैं – मोक्ष अवस्था है। मोक्ष, पर्याय है न ? और मोक्षमार्ग क्या है ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र क्या है ? गुण है या पर्याय है ? पर्याय है। सम्यग्दर्शन पर्याय है, सम्यग्ज्ञान पर्याय है, चारित्र पर्याय-अवस्था है; गुण तो त्रिकाल है। गुण प्रकट नहीं होते; प्रकट हो वह पर्याय, टिके वह गुण। समझ में आया ? आहा..हा.. ! अनन्त गुण सहित का टिकना, वह द्रव्य। एक-एक शक्ति-गुण का टिकना, वह गुण और प्रकट होना, वह पर्याय। उत्पाद-व्यय होना वह पर्याय तो प्रकट है। मोक्ष अवस्था कहीं अनादि से प्रकटी हुई नहीं थी। समझ में आया ? इसलिए कहते हैं – अटल अविनाशी अनन्त सुखदायक की अवस्था को भगवान्, मोक्ष कहते हैं, वह मोक्ष कहलाता है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि को व्यवहार समकित से उसे भलीभाँति मानना चाहिए। ‘इस प्रकार जो सात तत्त्वों के भेद सहित...’ यह सात भेद हैं न ? ‘श्रद्धा करना, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है।’ कहो, समझ में आया ?

‘वीतराग-सर्वज्ञ और हितोपदेशी सच्चे देव...’ उन्हें व्यवहार समकित में श्रद्धा चाहिए। जिनेन्द्रदेव वीतराग-सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक का ज्ञान है। ऐसे सर्वज्ञ प्रभु वीतराग हित के उपदेशक हैं। यह अरिहन्तरूप से लिया है। सच्चे देव अकेले सामान्य उपदेश बिना लो तो सिद्ध भी देव में आ जाते हैं। वीतराग-सर्वज्ञ अरिहन्त, वीतराग सर्वज्ञ पूर्णस्वरूप सिद्ध – ये सच्चे देव हैं, उन्हें इस प्रकार मानना, वह व्यवहार समकित का विषय है।

‘(परिग्रह बिन) २४ परिग्रह से रहित वीतराग गुरु...’ दिगम्बर गुरु, जिन्हें २४ प्रकार के परिग्रह में एक (भी) नहीं होता। जिन्हें अन्तर में तीन कषाय का अभाव हुआ, वह भाव

(लिंग); बाह्य में वस्त्र का एक तंतु नहीं होता, वस्त्र का तंतु भी नहीं होता - ऐसे गुरु को जैनदर्शन में निर्ग्रन्थ गुरु (कहते हैं)। व्यवहार समकित के कारण में उन्हें - देव-गुरु को गिना गया है। समझ में आया ? जिसके गुरु में भूल है, वस्त्र-पात्र सहित को गुरु माने (उन्हें) निर्ग्रन्थ गुरु माने, उन्हें साधु माने, उसे तो अभी व्यवहार समकित में भूल है। समझ में आया ? ए... देवानुप्रिया !

मुनि, दिगम्बर मुनि-आत्मा के तीन कषाय का नाश (हुआ है)। उसमें बाह्य में २४ प्रकार का परिग्रह (नहीं); वस्त्र का एक तंतु, धागा नहीं होता। उसे यहाँ निर्ग्रन्थ गुरु, मोक्षमार्ग में समकित के निमित्तकारणरूप से उन्हें कहा गया है। उन्हें इस प्रकार से जानना-मानना चाहिए।

‘(तथा) सारभूत अहिंसामय जैनधर्म...’ लो ! सारभूत अहिंसा ऐसा धर्म, रागरहित आत्मा का धर्म। ‘(येहु) इन सबको सम्यग्दर्शन का निमित्तकारण जानना चाहिए।’ समझ में आया ? सम्यग्दर्शन का निमित्तकारण, हाँ ! व्यवहार समकित का निमित्तकारण। ‘सम्यग्दर्शन को उसके आठ अंगों सहित धारण करना चाहिए।’ लो ! फिर वह सम्यग्दर्शन (इस प्रकार धारण करना चाहिए)। यह सब व्यवहार समकित कहा। सात तत्त्व की श्रद्धा, सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे अहिंसा धर्म को श्रद्धा करना, वह व्यवहार समकित है। उसे आठ अंग सहित धारण करना चाहिए। (विशेष कहेंगे...) (श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)



तीन काल और तीन लोकमें शुद्ध निश्चयनसे ज्ञान-रस और आनन्द-कन्द प्रभु केवल मैं हूँ। ‘ऐसा हूँ’ - ऐसी दृष्टि ही आत्म-भावना है। मैं ऐसा हूँ तथा सभी जीव भी भगवत्स्वरूप है, परमात्मस्वरूप सभी जीव हैं, - वस्तुदृष्टिसे सभी जीव ऐसे हैं - ऐसे आत्माका अनुभव होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान है और उसमें स्थिर होना चारित्र है। इस प्रकार मन-वचन-कायासे व कृत-कारित-अनुमोदनासे निरंतर याने कि अन्तर डाले बिना - यह भावना भाना कर्तव्य है ‘कि समस्त जीव ऐसे (परमात्मस्वरूप) ही हैं’ इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी करने योग्य माने तो वह आत्मा का अनादर है।

(परमागमसार - २७०)